ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-9* October- 2017
Innovation The Research Concept

बस्तर का मेरिया विद्रोह (1842 ई. से 1863 ई.तक)

डिश्वर नाथ खुटे
सहायक प्राध्यापक,
इतिहास अध्ययन शाला विभाग,
पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय,
रायपुर, छ.ग.

सारांश

बस्तर रियासत में नरबलि के संबंध में यह कहा जाता है कि जिस व्यक्ति की बलि दी जाती थी या तो उसे किसी गांव से चुराकर पकड़ लिया जाता था या फिर उसे जगदलपुर के कैदियों में से चुना जाता था। सामान्यतः ऐसे व्यक्ति की कोई रिश्तेदारी नहीं होती थी और वह उस क्षेत्र के लिए अपरिचित सा होता था। नरबलि के निमित्त पकड़े गये लोग को मेरिया कहा जाता है। नरबलि के संदर्भ में अंग्रेजो ने बस्तर के राजा भूपालदेव से पूछताछ किया, परन्तु इस संबंध में उन्होंने कोई स्पष्ट जानकारी नहीं दी। लेकिन जगदलपुर के इयर मुहम्मद खां ने अंग्रेजों को नरबलि के संदर्भ में शपथपूर्वक जानकारी प्रदान की। उसने कहा कि –बस्तर में नरबलि की प्रथा प्रचलित है, पहले मैं महिपाल देव का नौकर था जो वर्तमान राजा भूपाल देव के पितामह थे। उनके समय में प्रति तीन वर्ष में दंतेश्वरी देवी की वृहद पूजा होती थी। उस समय 500–600 बकरे और भैंसे बलि के रूप में दिए जाते थे। मैंने यह भी सुना कि रात को 3 या 4 व्यक्तियों को चुराकर नरबलि भी दी गई, परन्तु मैंने इस घटना को अपनी आंखों से नहीं देखा। उसने दो–तीन ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया, जिनके अनुसार गांव के हट्टे–कट्टे व्यक्तियों को बलि के लिये भेजा गया था। राजा किसी वर्ष नरबलि दिये बिना नहीं रह सकता था। इसलिए आसपास के गांव के लोग पकड़ लिए जाने के भय से सदा आतंकित रहते थे। नरबलि की कार्यवाही गुप्त रूप से की जाती थी। ऐसा माना जाता था कि नरबलि से बस्तर की देवी दंतेश्वरी की कृपा पूरे रियासत में बनी रहेगी ,और ऐंसा नहीं करने से बीमारी ,अकाल आदि प्राकृतिक प्रकोप फैलेगी ।

मुख्य शब्द : रियासत, वत्सर, दण्डकारण्य, महाकान्तार, चक्रकूट, काकरय, नक्सली, नरबलि, मेरिया ,शंकिनी तथा डंकिनी , टकोली, हिड़मा मांझी

प्रस्तावना

बस्तर छत्तीसगढ़ प्रभाग (मध्यप्रांत) की एक प्रमुख रियासत थी। यह रियासत छत्तीसगढ़ के सभी 14 रियासतों में सबसे बड़ी थी, जिसकी राजधानी जगदलपुर थी।[1] बस्तर अपनी संस्कृति, पुरातात्विक एवं भौगोलिक विशेषताओं के कारण देश के आकर्षण का केन्द्र हैं। यह भारत ही नहीं बल्कि पूरे एशिया महाद्वीप का सबसे बड़ा आदिवासी अंचल हैं।[2] प्राचीन समय में यह अंचल आर्य और अनार्य संस्कृति का संगम स्थल था जो वत्सर, दण्डकारण्य, महाकान्तार, चक्रकूट, काकरय आदि नामों से प्रसिद्ध रहा हैं। इसे भारत का सोया हुआ दैत्य, शोधकर्ताओं का स्वर्ग, विचित्रताओं का प्रदेश भी कहा गया हैं। छत्तीसगढ़ प्रांत का दक्षिण में स्थित बस्तर अंचल में वनवासी अपने आंसुओं और मुस्कानों का जीवन बीताते आ रहे हैं।[3] बस्तर की सीमाओं में समय समय पर परिवर्तन होता रहा हैं। प्रारंभिक काकतीय शासकों के समय में उड़ीसा प्रांत का कोटपाड़, चुचेंड़ा उमरकोट, रायगढ़ा और पोड़ागढ़ बस्तर में आता था।[4]

नागवंशी शासकों के शासन काल में बस्तर का नाम चक्रकोट था। चक्रकोट में आंध्र के काकतीय शासक अन्नम देव ने अंतिम नागवंशी शासक हरिश्चंद्र देव को पराजित कर बारसूर में 1324 ई. में सिंहासनारूढ़ हुआ तथा उसने राजधानी को दंतेवाड़ा स्थानांतरित किया। कुछ समय बाद मंधोता, कुरूसपाल, राजपुर, बड़ेडोंगर, चीतापुर, राजनगर, तथा बस्तर भी राजधानी रही एवं दलपत देव के समय 1772 ई. में जगदलपुर को राजधानी बनाया गया।[5] इसके बाद से जगदलपुर ही रियासत की राजधानी बनी रही, तथा बस्तर का एक प्रमुख शहर के रूप में स्थापित हो गया ।

अध्ययन का उददेश्य

इस शोध पत्र से हम यह जान सकेंगे कि–

1. बस्तर अपनी संस्कृति, पुरातात्विक एवं भौगोलिक विशेषताओं के कारण देश के आकर्षण का केन्द्र हैं। यह भारत ही नहीं बल्कि पूरे एशिया महाद्वीप का सबसे बड़ा आदिवासी अंचल हैं। बस्तर कुछ वर्षों से नक्सली हिंसक घटनाओ की वजह से पूरे देश में चर्चित है ।
2. बस्तर के राजा भूपाल देव के शासनकाल में 1842 ई. में किसी ने नागपुर राजा को शिकायत कर दी कि बस्तर के दंतेवाड़ा में दंतेश्वरी देवी को नरबलि दी जाती है।
3. नरबलि के संदर्भ में अंग्रेजो ने बस्तर राजा से पूछताछ किया, परन्तु इस संबंध में उन्होंने कोई स्पष्ट जानकारी नहीं दी, लेकिन जगदलपुर के इयर मुहम्मद खां ने अंग्रेजों को नरबलि के संदर्भ में शपथपूर्वक जानकारी प्रदान की तथा उसने कहा कि –बस्तर में नरबलि की प्रथा प्रचलित है।
4. 1842 ई. में मंदिर के चारो ओर भोंसला सुरक्षा सैनिकों की एक टोली नियुक्त कर दी गई जिससे नरबलि रोकी जा सके। नरबलि के कुप्रचलन के संबंध में मराठा–शासन ने भूपाल देव पर अभियोग लगाया था ।
5. इस तरह बस्तर में अंग्रेजो व मराठों का हस्तक्षेप आदिवासियों की संस्कृति में शुरू हुआ जिसका दंतेवाड़ा के दंतेश्वरी मंदिर के पुजारी एवं स्थानीय माड़िया जनजाति के लोगों ने विरोध किया तथा यह विद्रोह का रूप ले लिया ।

बस्तर वर्तमान में छत्तीसगढ़ का एक संभाग है जिसके अंतर्गत सात जिले– जगदलपुर, कांकेर, कोंडागांव, दंतेवाड़ा, सुकमा, बीजापुर तथा नारायणपुर शामिल है। विगत कुछ वर्षों से बस्तर नक्सली हिंसक घटनाओं की वजह से पूरे देश में चर्चित रहा है।

बस्तर मुख्यतः आदिवासी अंचल रहा हैं। पं. केदारनाथ ठाकुर के अनुसार –बस्तर में बहुत प्रकार के लोग बसते हैं। बहुत विदेशी लोग आकर बसे हुए हैं, सब मिलाकर 62 प्रकार की जाति यहां बसते हैं जिनमें 24 राज्य के आदि निवासी और बाकी विदेशी हैं।[(6)] इनके विवरण में विदेशी से तात्पर्य बस्तर से बाहर एवं आदि निवासी से तात्पर्य बस्तर के मूल निवासियों से हैं। बस्तर में पहली बार 1931 की जनगणना में विभिन्न आदिवासियों को सात अलग–अलग शीर्षकों में वर्गीकृत किया गया। ये जातियां थी–भतरा, गोंड़, मुरिया, माड़िया, हल्बा, धुरवा तथा परजा।[7]

काकतीय शासक महिपाल देव की दो रानियां थी। बड़ी रानी का नाम पद्मकुंवर और छोटी रानी का नाम हरकुंवर थी। बड़ी रानी से भूपाल देव एवं छोटी रानी से दलगंजन सिंह पैदा हुए थे। 1842 ई. में राजा महिपाल देव की मृत्यु के उपरांत उनका ज्येष्ठ पुत्र भूपाल देव बस्तर की राजगद्दी पर बैठा। भूपाल देव दानी तथा शान्त स्वभाव का था।[8] भूपाल देव को संस्कृत, न्याय, व्याकरण, तथा ज्योतिष शास्त्र का अच्छा ज्ञान था। वे एक अच्छे पहलवान भी थे। अपने शरीर के विभिन्न अंगों से वे एक साथ चौदह नारियल फोड़ लेते थे।[9] भूपाल देव ने बस्तर राजसिंहासन पर बैठने के बाद अपने सौतेले भाई दलगंजन सिंह को 1842 ई. में तारापुर परगने का गर्वनर नियुक्त किया । भूपाल देव की तुलना में दलगंजन सिंह अपने सदाचरण और पराक्रम के कारण बस्तर की आदिवासी जनता में लोकप्रिय था तथा भूपाल देव सदा उससे भयभीत रहता था।[10]

पं.ठाकुर केदार नाथ के अनुसार– महाराज भूपाल देव तथा लाल दलगंजन सिंह के बीच चन्दरोज तक आपस में अज्ञात कारणों से मनमुटाव के कारण अनमेल रहा, जिससे बस्तर में अशान्ति रही।[11] भूपाल देव का अपने सौतेले भाई लाल दलगंजन सिंह के साथ अनवरत विवाद चलता रहा। लाल दलगंजन सिंह एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसे निर्वाह के लिये भूपाल देव ने अठारह गढ़ों की जागीर प्रदान की थी, किन्तु दलगंजन सिंह ही संतुष्ट नहीं था। युवावस्था से ही उसे तीव्र राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने का अवसर प्राप्त हो चुका था। 1842 ई. में वह नागपुर के मराठा शासकों तथा उनके संरक्षक अंग्रेजों के संपर्क में आ चुका था।[12] भूपाल देव के राजा बनने के कुछ समय बाद ही 1842 ई. में किसी ने नागपुर राजा को शिकायत कर दी कि बस्तर के दंतेवाड़ा में दंतेश्वरी देवी को नरबलि दी जाती है। इस गंभीर शिकायत के संबंध में स्पष्टीकरण देने हेतु बस्तर के राजा भूपाल देव को नागपुर बुलाया गया, किन्तु आंख की बीमारी के कारण वे नहीं जा पाये। उन्होंने अपने सौतेले भाई लाल दलगंजन सिंह को दीवान जगबन्धु के साथ 1842 ई. में नागपुर भेजा। लाल दलगंजन सिंह ने 6 माह के नागपुर प्रवास में अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा कुशाग्रबुद्धि से नागपुर के भोंसला शासक तथा ब्रिटिश रजीडेण्ट को प्रभावित किया।[13] नागपुर के राजा ने बस्तर राजा भूपाल देव को सलाह दिये कि लाल दलगंजन सिंह को बस्तर के व्यवस्थापन का कार्य सौंपा जाय।[14] नागपुर राजा की यह सलाह एक प्रकार से आदेश ही था, भूपाल देव ने इसे कार्य रूप में परिणत किया।

जब दंतेवाड़ा में होने वाली नरबलि की प्रकरण की जानकारी नागपुर के शासक को मिली तो नागपुर के ब्रिटिश रेजीडेण्ट ने दंतेवाड़ा और करौंद (उड़ीसा) की उस प्रथा को बंद करने का प्रयास किया। अंग्रेज चाहते थे कि नागपुर का राजा नरबलि की प्रथा के उन्मूलन हेतु संबंधित जमींदारों पर अपने प्रभाव का उपयोग करे।[15] बस्तर में नरबलि की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही थी। नागवंशी राजा मधुरान्तक देव (1062–1069 ई.) ने नरबलि के लिये राजपुर गांव मणिकेश्वरी मंदिर को अर्पित किया था। इसका उल्लेख मधुरान्तक देव का राजपुर ताम्रपत्र में किया गया है।[16]

नरबलि के संबंध में यह कहा जाता है कि जिस व्यक्ति की बलि दी जाती थी या तो उसे किसी गांव से चुराकर पकड़ लिया जाता था या फिर उसे जगदलपुर के कैदियों में से चुना जाता था। सामान्यतः ऐसे व्यक्ति की कोई रिश्तेदारी नहीं होती थी और वह उस क्षेत्र के लिए अपरिचित सा होता था।[17] नरबलि के निमित्त पकड़े गये लोग को मेरिया कहा जाता है। नरबलि के संदर्भ में अंग्रेजो ने बस्तर राजा से पूछताछ किया, परन्तु इस संबंध

में उन्होंने कोई स्पष्ट जानकारी नहीं दी, लेकिन जगदलपुर के इयर मुहम्मद खां ने अंग्रेजों को नरबलि के संदर्भ में शपथपूर्वक जानकारी प्रदान की। उसने कहा कि –बस्तर में नरबलि की प्रथा प्रचलित है, पहले मैं महिपाल देव का नौकर था जो वर्तमान राजा भूपाल देव के पितामह थे। उनके समय में प्रति तीन वर्ष में दंतेश्वरी देवी की वृहद पूजा होती थी। उस समय 500–600 बकरे और भैंसे बलि के रूप में दिए जाते थे। मैंने यह भी सुना कि रात को 3 या 4 व्यक्तियों को चुराकर नरबलि भी दी गई, परन्तु मैंने इस घटना को अपनी आंखों से नहीं देखा। उसने दो–तीन ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया, जिनके अनुसार गांव के हट्टे–कट्टे व्यक्तियों को बलि के लिये भेजा गया था। राजा किसी वर्ष नरबलि दिये बिना नहीं रह सकता था। इसलिए आसपास के गांव के लोग पकड़ लिए जाने के भय से सदा आतंकित रहते थे। नरबलि की कार्यवाही गुप्त रूप से की जाती थी।[18] ऐसा माना जाता था कि नरबलि से बस्तर की देवी दंतेश्वरी की कृपा पूरे रियासत में बनी रहेगी ,और ऐसा नहीं करने से बीमारी ,अकाल आदि जैसे प्राकृतिक प्रकोप फैलेगी ।

लाला जगदलपुरी के अनुसार–इस अंचल का यह एक दुर्भाग्य रहा है कि यहां नाग कालीन '' मधुरमण्डल'' से लेकर चालुक्यों के शासनकाल तक नरबलि प्रथा को राज्याश्रय प्राप्त था। चालुक्य नरेश महिपाल देव के समय दंतेवाड़ा के दंतेश्वरी मंदिर में विजयादशमी के अवसर पर त्रिवर्षीय ''नरबलि समारोह'' आयोजित हुआ करता था। इसमें सैकड़ों पशु मुण्डों के साथ–साथ पन्द्रह नरमुण्ड भी काटे जाते थे। विवरण मिलता है कि सन् 1825 ई. में तत्कालीन चांदा जिला के अंग्रेज सुपरीटेंडेट ने एक गुप्तचर भेजकर नरबलि समारोह के प्रकरण का पता लगाया था और इस जघन्य कृत्य के लिये राजा को नागपुर के भोंसला प्रशासन ने दण्डित भी किया था। इस कुप्रथा के कारण रियासत की आतंकित एवं भयभीत प्रजा स्वयं को असुरक्षित पा रही थी।[19]

ब्रिटिश शासन ने बस्तर एवं उड़ीसा क्षेत्रों में प्रचलित नरबलि प्रथा की जांच के लिये मैकफर्सन को नियुक्त किया था। इस संबंध में मैकफर्सन ने 1852 ई. में प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था जिसके कतिपय अंश उद्धृत है– ताड़ी पेन्नु या माटी देव की पूजा में प्रमुख संस्कार नरबलि का है। इसे यहां की जनजातियां एक सार्वजनिक उत्सव के रूप में आयोजित करती है तथा इसका आयोजन विशेष अवधि में होता है। अपवाद स्वरूप यदा–कदा लोगों के अत्यधिक रोगाक्रान्त होने से जन अकाल मृत्यु से मरने वालों की संख्या बढ़ जाती हैं या जनजातिक मुखिया के परिक्रम में कोई अप्रत्याधित आपदा आ पड़ती है, उस समय इस का आयोजन निरवधिक होता है। नरबलि के निमित्त वध्य लोगों को मेरिया कहा जाता है तथा उन्हें इस कार्य काल में या तो खरीद लिया जाता है या कि वे किसी अपराधी या नरबलि में दिये गये पिता के पुत्र होते हैं। खोड़ जनजाति में नरबलि के निमित्त वध्यजनों की पूर्ति का कार्य पावां एवं गहिंगा जनजाति द्वारा किया जाता है। पावां या तो ऐसे वध्य जनों को क्रय कर लेते हैं या फिर वे निर्धन हिन परिवारों के लोगों का तदर्थ अपहरण करते हैं।

ब्लण्ट, एगेन्यू तथा जेन्किन्स के यात्रा विवरण प्रतिवेदनों के आधार पर तद्युगीन मराठा–शासन में यह बात कुख्यात हो चली थी कि शंकिनी तथा डंकिनी नदियों के संगम पर स्थित दंतेवाड़ा के दंतेश्वरी मंदिर में नरबलि की एक क्रूर प्रथा विद्यमान थी। इस प्रकार की नरबलि का अंत उड़ीसा के गुमसर तथा कालाहांडी क्षेत्रों से अंगेज शासकों ने 1842 ई. से पूर्व करा दिया था। मद्रास प्रेसीडेंसी तथा उड़ीसा के अधिकारियों ने 1837 ई. में ब्रिटिश शासन को यह सूचना दी कि बस्तर में नरबलि की कुप्रथा आज भी विद्यमान है। परिणामतः अंग्रेजों ने मराठा शासन को यह आदेश दिया कि वह अधीनस्थ बस्तर राज्य में प्रचलित नरबलि को बंद करवाने का प्रयास करें। फलस्वरूप तद्युगीन बस्तर के दीवान लाल दलगंजन सिंह को 1842 ई. में नागपुर बुलवाया गया तथा इस संबंध में उनसे पूछताछ की गई। लाल दलगंजन के विवरण से मराठा शासन को बस्तर में नरबलि के प्रचलन का सन्देह हुआ तथा 1842 ई. में मंदिर के चारो ओर भोंसला सुरक्षा सैनिकों की एक टोली नियुक्त कर दी गई जिससे नरबलि रोकी जा सके। इस प्रकार की नरबलि के कुप्रचलन के संबंध में मराठा–शासन ने जब भूपाल देव पर अभियोग लगाया था तो उसने अनभिज्ञता प्रदर्शित की थी तथा यह वचन दिया था कि यदि ऐसी कुरीति विद्यमान है तो उसे शीघ्र ही समाप्त कर दिया जाएगा।[20]

इस तरह भोंसला शासन के इतिहास में यह पहला अवसर था जब 1842 ई. में मराठों ने बस्तर पर हस्तक्षेप किया था। इससे पूर्व टकोली लेने के अतिरिक्त बस्तर के राजाओं पर कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया था।

1842 ई. में ब्रिटिश रेजीडेण्ट ने बस्तर के दीवान लाल दलगंजन सिंह से नरबलि के संबंध में तहकीकात की, जिसमें दलगंजन सिंह ने स्वीकार किया कि बस्तर में नरबलि प्रचलित हैं। तद्नुसार नागपुर राजा द्वारा सुरक्षा टुकड़ी 1842 ई. से 1863 ई. तक 22 वर्षों के लिये दंतेवाड़ा के मंदिर में नियुक्ति की गयी ताकि नरबलि की प्रथा को रोका जा सके।[21] दंतेवाड़ा क्षेत्र को निषिद्ध घोषित कर रायपुर के तत्कालीन तहसीलदार शेर खां को नरबलि को दबाने के लिये वहां भेजा गया।

दंतेश्वरी मंदिर के पुजारी श्याम सुन्दर जिया का बस्तर में बहुत अधिक सम्मान था। उसने ब्रिटिश सरकार के इस कार्य से आदिवासियों की अपनी परम्परा पर बाहरी आक्रमण समझा तथा कार्यवाही का विरोध किया एवं आदिवाासियों को विद्रोह के लिये उकसाया।[22] तत्पश्चात् मेरिया विद्रोह प्रारंभ हो गया।

इस तरह दंतेवाड़ा की आदिम जनजातियों के 19वीं शताब्दी में आंग्ल– मराठा शासन के खिलाफ विद्रोह शुरू हुआ। यह आत्मरक्षा के निमित्त एक विद्रोह था। उनकी धरती पर विदेशियों की घुसपैठ के विरूद्ध एक विद्रोह था। यह उनकी परम्परा और रीति रिवाजों पर होने वाले बाह्य आक्रमण के विरूद्ध एक विद्रोह था।

ब्रिटिश प्रशासक स्थानीय लोगों तथा उनके विचित्र रीति रिवाजों,रूढ़ियों तथा शिष्टाचारों से अपरिचित थे। यदि उन्हें इन सभी बातों का उचित ज्ञान होता तो उनका आचरण भी संयत होता तथा विद्रोह की स्थिति न बनती।[(23)]

ब्रिटिश सरकार ने दीवान दलगंजन सिंह को हटाकर वामन राव को नया दीवान नियुक्त किया । अरब के सैनिकों की टुकड़ी दंतेवाड़ा भेजी गई। दंतेश्वरी के भय से दण्डामी, माड़िया लोगों ने उन सैनिकों की कोई सहायता नहीं की। मंदिर के पुजारी श्यामसुन्दर जिया ने कहा कि यदि नरबलि समाप्त हो गयी तो दंतेश्वरी देवी असंतुष्ट हो जाएंगी। तब ब्रिटिश राज बस्तर को छीन लेगा और सभी आदिवासी गुलाम हो जाएंगे। हिड़मा मांझी के नेतृत्व में माड़िया आदिवासियों ने विद्रोह प्रारंभ कर दिया तथा मांग किये कि दंतेवाड़ा से सैनिक हटा लिये जाएं।[24]

विद्रोहियों की बातें को अनसुनी कर नये दीवान वामनराव के आदेश से मुसलमान सैनिकों ने माड़िया लोगों पर जुल्म करना प्रारंभ कर दिया। अनके माड़िया गांवो को जला दिये गये, अनके विद्रोही पकड़े गए ,उन्हें मारा–पीटा गया , लेकिन हिड़मा मांझी बच निकला। उसने विद्रोहियों को पुनः संगठित किया तथा वे नागपुर के सैनिकों पर छिप–छिप कर आक्रमण करने लगे। उनके पास परंपरागत कुल्हाड़ी, भाला, फरसा, तीर कमान, पत्थर जैसे हथियार ही थे। लेकिन वे अपनी आत्मविश्वास से भरे हुए थे। विद्रोही हथियार डालने को सोंच ही नहीं रहे थे । ऐसी स्थिति में रायपुर से अतिरिक्त सेना बुलानी पड़ी। अतिरिक्त सैनिकों की मदद से इस विद्रोह को अग्रेजों व मराठा अधिकारियों के आदेशानुसार पूरी तरह से कुचल दिया गया। अरब सैनिकों ने गांवों को लूटा ही नहीं, बल्कि माड़िया आदिवासियों की महिलाओं के साथ दुष्कृत्य कर भीषण अत्याचार भी किए ।[25]

इस मेरिया विद्रोह पर **दंडामी माड़िया लोकगीत** भी मिलता है जो कि इस प्रकार हैं–

''क्वचित बकरा क्वचित वृद्ध पुरूष
क्वचित सुण्डी क्वचित बरामदे
का मुख पान करे मदिरा।
कियोबेन के कार्यकाल में समूचा बस्तर था तिमिराच्छन,
कुहासे से मुहरबंद, कुहासे से बढ़ता है कभी कोई देश,
तब होती थी हत्या, राता था रक्तपात
गांवो में होता था बोहरानी–त्योहार
सुखती थी खेत, सूखते थे पात।
बंधु बांधवों ने साथ बैठकर सोचा संहति का उपाय
और जब था जीवन–मृत्यु का प्रश्न
साहब आए कैबोन, भय व संत्रास से भागे सभी जन।
साहेब ने दिलाया विश्वास, पुकारा मालिकों कुआरों को
सबको दिया बोध, मृत्यु से लड़ने का
भेजा वाहक धरती पुत्रों को इकठ्ठा करने
घेर कर मेरिया को पकड़ा, उसके सहयोगियों को पकड़ा
हंसिया और सांकल देख डरे लोग,
रूकी तब हत्या–रक्तपात, हुई धरती तब खुशहाल,
मोको देखा साहब आए, मेट्टा व चट्टा में छिपे
तोड़ा शेर–चीतो के कतार।
फिर हुई लोगों में सम्बोधि, यासांतर खुली पाठशालाएं
हुआ नियम और ज्ञान का प्रकाश
संचित हुआ स्वर्ण व रजत भंडार
हो गए सभी कोया समृद्ध।।[26]

स्तर विषयक शोध करने वाले शोधार्थियों एवं लेखकों ने नरबलि के संबंध में कुछ बातें लिखी हैं। इनमें रामकुमार बेहार के अनुसार– छ.ग. में सतनाम पंथ के प्रवर्तक संत गुरू घासीदास ने 1810 के आसपास बस्तर प्रवास किया था जिसने दंतेश्वरी देवी से नरबलि न लेने हेतु उसे राजी कर लिया था और उसने अपना जीवन जोखिम में डालकर उस नरबलि जैसी सामाजिक बुराई को समाप्त किया।[(27)] इसी तरह जे.आर. वर्ल्यानी एवं वासुदेव साहसी ने भी लिखे है कि– दंतेवाड़ा के नरबलि की प्रथा संत गुरूघासी दास के प्रयासों के कारण समाप्त हुई थी।[(28)] जो भी हो बस्तर में प्रचलित परंपरा नरबलि की प्रथा समस्त मानव के लिए एक सामाजिक बुराई थी, जिसे एक न एक दिन समाप्त होना ही था, और बस्तर के बारे में जानने तथा उसे देखने के इच्छुक लोगों के लिए यह एक महत्वपूर्ण कदम रहा । बस्तर आज एक शक्तिपीठ के रूप में जाना तथा पहचाना जाता है। यहां के दंतेश्वरी माई का दर्शन करने व उनका आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए लोगों की भीड़ मंदिर में देखने को मिलता है।

निष्कर्ष

इस तरह जब हम बस्तर में मेरिया विद्रोह के इतिहास को देखते है तो हमे ज्ञात होता है कि उक्त विद्रोह प्रकृत्या प्रतिशोधी था। आदिवासी यह नहीं चाहते थे कि दंतेवाड़ा में सेना को नियुक्त कर देवालय को अपवित्र कर दिया जाये, हमारी रियासत के राजा को परेशान नहीं किया जावे, हमारी संस्कृति पर कोई बाहय हस्तक्षेप न हो । हमारी देवी दंतेश्वरी की कृपा रियासत पर बनी रहे । लंबी अवधि तक उस अंचल में मुसलमान सेना की उपस्थिति से आदिवासियों के एक अनवरत् शोषण का चक्र प्रारंभ हुआ। अब आदिवासियों के परम्पराओं पर कुठाराघात होने लगा, आदिवासियों की जंगलो में स्वतंत्र रूप से विचरण पर प्रतिबंध लगाने से उनकी आजादी छीनी जा रही थी, उनकी वन देवी रो रही थी। आंग्ल मराठा सैनिकों को बस्तर की जनजातियों के रीति–रिवाजों व तौर तरीकों का ज्ञान नहीं था, वे उन्हें बार–बार अपमानित कर रहे थे। यदि मेरिया की प्राकृतिक संरचना को समझने का प्रयास किया गया होता तो यह विद्रोह दीर्घकालिक नहीं होता।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *बेहार, रामकुमार, छत्तीसगढ़ का इतिहास, छ.ग. राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रायपुर, 2010 पृ. 172.*
2. *श्रीवास्तव, निर्मलकांत, छत्तीसगढ़ के रियासतो में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, छ.ग. राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी रायपुर, 2009 पृ. 32*
3. *पूर्वोक्त, पृष्ठ वहीं.*

4. वर्ल्यानी जे.आर. एवं साहसी व्ही.डी., बस्तर का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, दिव्या प्रकाशन, कांकेर, 1998, पृ. 4
5. जगदलपुरी, लाला, बस्तर इतिहास एवं संस्कृति, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल 2007, पृ. 6
6. ठाकुर केदार नाथ, बस्तर भूषण, नवकार प्रकाशन कांकेर, (पुनर्मुद्रित), 2005, पृ. 40
7. बेहार, रामकुमार एवं निर्मला, बस्तर आरण्यक ,निर्मला बेहार जगदलपुर, 1985, पृ. 72
8. शुक्ल हीरालाल, आदिवासी बस्तर का वृहद इतिहास, बी.आर. पब्लिशिंग, दिल्ली 2005, पृ 38
9. झा, कृष्ण कुमार, आश्लेषा एवं रोहिणी कुमार, बस्तर के लोक नायक– प्रवीरचंद भंजदेव एवं उनकी वंश परंपरा, विश्व भारती प्रकाशन नागपुर, 2006 पृ. 62
10. शुक्ल, हीरालाल, पूर्वोक्त पृ. वहीं
11. ठाकुर केदारनाथ, पूर्वोक्त पृ. वहीं
12. झा, कृष्ण कुमार पूर्वोक्त पृ. 62–63
13. बेहार, रामकुमार एवं निर्मला पूर्वोक्त पृ. 43
14. इलियट सी. रिपोर्ट 1816 पृ. 14
15. वर्ल्यानी जे.आर. पूर्वोक्त पृ 97
16. बेहार, रामकुमार एवं निर्मला पूर्वोक्त पृ. 16
17. वर्मा, भगवान सिंह छत्तीसगढ़ का इतिहास म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल पृ. 188
1. फारेन पालिटिकल करेसपांडेन्स फाइल नं. 114–115–2 आफ 1855 एस्ट्रेक्ट फ्राम ए लेटर फ्राम एजेंट इन दी हिल ट्रैक्ट आफ ओड़िसा दिनांक 22. 01.1853
2. जगदलपुरी लाला, बस्तर इतिहास एवं संस्कृति, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी. भोपाल, 2007, पृ. 11 19(अ). मैकफर्सल कोलोनेल, जर्नल आफ रायल एथियारिक सोसायटी, कलकत्ता, 1852, भाग–13, पृ. 243
18. रसेल, आर. व्ही.,इंपीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया पृ. 450.
19. शुक्ल हीरालाल, बस्तर का मुक्ति संग्राम, पूर्वोक्त पृ. 113
20. वर्मा, भगवान सिंह, पूर्वोक्त पृ. 241
21. शुक्ल हीरालाल, पूर्वोक्त पृ. 112
22. पूर्वोक्त पृ. 116
23. शुक्ल हीरालाल, आदिवासी बस्तर का वृद्ध इतिहास पंचमखंड, पूर्वोक्त पृ. 45
24. पूर्वोक्त पृ. 45–46
25. बेहार, रामकुमार, छत्तीसगढ़ी संस्कृति और विभूतियां छ.ग. शोध संस्थान, रायपुर, 2003 पृ. 41–42
26. वर्ल्यानी जे.आर. पूर्वोक्त पृ. 188